

व्यक्ति का सर्वोच्च महत्त्व है, भले ही समाज, धर्म और सरकार इस तथ्य को मान्यता नहीं देते। आप अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि आप यथार्थ की प्रस्फोटक सर्जनात्मकता को लाने वाले एकमात्र साधन हैं। आप स्वयं ही वह वातावरण हैं जिसमें यथार्थ अस्तित्व में आ सकता है। लेकिन आप देख चुके हैं कि सभी सरकारें, सभी संगठित धर्म और समाज व्यक्ति के महत्त्व पर ज़ोर देते हुए भी व्यक्ति के मर्म, व्यक्ति की भावनाओं को मिटाने की कोशिश करते हैं, क्योंकि वे सामूहिक भावदशा, सामूहिक प्रतिक्रिया चाहते हैं। परंतु ऐसा मन वैयक्तिक मन नहीं है जो किसी खास ढर्रे के विश्वास के अनुसार संगठित हो, जो प्रथाओं, परंपराओं व ज्ञान के भार से दबा हुआ हो। वैयक्तिक मन तभी हो सकता है जब आप सोच-समझकर, जानते हुए, भावपूर्वक इन सब प्रभावों को अलग हटा देते हैं, क्योंकि आप उनका अभिप्राय, उनका सतही मूल्य समझ चुके हैं। एक वैयक्तिक सर्जनशील मन केवल उसी स्थिति में संभव है।

मनुष्य को समूह से अलग करना असाधारण रूप से कठिन है, लेकिन इस पृथक्करण के बगैर यथार्थ संभव नहीं है, अतः सच्चा व्यक्ति वह नहीं है जिसके पास बस एक नाम है, कुछ खास भावनात्मक प्रत्युत्तर हैं, कुछ विशेष प्रथागत प्रतिक्रियाएं हैं, कुछ संपत्ति आदि है, बल्कि सच्चा व्यक्ति वह है जो धारणाओं के इस विभ्रम, परंपरा के इस दलदल के पार लग जाने का यत्न कर रहा है, जो इस सबको परे हटाकर मनुष्य की दुर्दशा के मर्म, केंद्र, कारण को खोज पाने की कोशिश कर रहा है। ऐसा मनुष्य पुस्तकों, प्रभुसत्ता, जानी-पहचानी प्रथाओं में शरण नहीं लेता, बल्कि इन सबको दूर हटा कर जांचना आरंभ करता है--वही सच्चे अर्थों में व्यक्ति होता है। परंतु हममें से अधिकांश दोहराते, स्वीकारते, मानते, आज्ञा-पालन करते रहते हैं--क्या हम यह सब नहीं करते? क्योंकि हमारे लिए आज्ञा मानना नियम बन गया है--घर में आज्ञा मानना, पुस्तक की आज्ञा मानना, गुरु की, शिक्षक की आज्ञा मानना इत्यादि--तथा इस आज्ञाकारिता में हम सुरक्षा का, सलामती का अनुभव करते हैं। किंतु वास्तव में जीवन में सुरक्षा नहीं है, जीवन कभी भी सुरक्षित नहीं है, उल्टे यह तो सबसे अधिक अनिश्चित बात है। और चूंकि यह अनिश्चित है, इसीलिए यह गहन रूप से समृद्ध, अपरिमेय है। लेकिन मन अपनी तलाश में सुरक्षा और सलामती खोजता रहता है और यह आज्ञा मानता है, अनुपालन एवम् अनुकरण करता है; और ऐसा मन वैयक्तिक मन कदापि नहीं है।

हममें से अधिकतर लोग व्यक्ति नहीं हैं, यद्यपि हममें से हर एक का एक अलग नाम, एक अलग रूप है, क्योंकि आंतरिक रूप से मन की अवस्था समयबद्ध है, प्रथा, परंपरा तथा प्रभुत्व--सरकार का प्रभुत्व, समाज का प्रभुत्व, घर में का प्रभुत्व--इस सबके भार से दबी हुई है। ऐसा मन वैयक्तिक मन नहीं है; वैयक्तिक मन इस सबसे बाहर होता है, वह समाज के ढर्रे के भीतर नहीं होता है। वैयक्तिक मन क्रांति की, विद्रोह की अवस्था में होता है, इसलिए उसे सुरक्षा की तलाश नहीं होती है। क्रांतिकारी कहा जाने वाला मन वस्तुतः क्रांति की स्थिति में नहीं है, बाहरी क्रांति का समर्थक मन हालात को बस एक खास ढर्रे के अनुसार बदलना चाहता है, तथा ऐसा मन अपने आप में असंतुष्ट, वास्तविक क्रांतिकारी मन नहीं है।

मुझे नहीं मालूम यदि आपने कभी ध्यान दिया है या नहीं कि असंतोष कितनी असाधारण बात है। आप बहुत से युवा लोगों को जानते होंगे जो असंतुष्ट हैं; वे नहीं जानते कि क्या करना है, वे तकलीफ में हैं, नाखुश हैं, बगावत की हालत में हैं, कभी कुछ तलाशते हैं, कभी कुछ कोशिश करते हैं, लगातार प्रश्न पूछते रहते हैं। परंतु जैसे ही वे उमर में बड़े होते हैं, नौकरी-धंधे से लग जाते हैं, शादी कर लेते हैं, और उस असंतोष का अंत हो जाता है। उनका आधारभूत असंतोष किनारों में बंध जाता है, और तब दुर्दशा आरंभ होती है। जब वे छोटे होते हैं, तो उनके माता-पिता, शिक्षक, समाज, सब उनसे कहते हैं कि असंतुष्ट नहीं होना है, पता लगाओ कि क्या करना चाहते हो और वही करो--लेकिन हो वह हमेशा इस ढांचे के भीतर

ही। ऐसा मन दरअसल बगावत में नहीं है, तथा सत्य को पाने के लिए आपको ऐसे मन की आवश्यकता है जो वास्तव में क्रांति की, विद्रोह की अवस्था में हो। विद्रोह का अर्थ है उत्कटता, आवेग।

इसलिए व्यक्ति होना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, तथा वैयक्तिकता मात्र स्व-ज्ञान से आती है--अपने आपको जानने से, यह जानने से कि क्यों आप अनुकरण करते हैं, क्यों आप किसी के अनुसार चलते हैं, क्यों आप आज्ञा मानते हैं। आप भय के कारण आज्ञा मानते हैं, क्या ऐसा नहीं है? आप सुरक्षित होने की इच्छा के चलते, अधिक पैसा, अधिक शक्ति या अधिक कुछ और प्राप्त करने के लिए अनुसरण करते हैं। परंतु जिसे आप ईश्वर कहते हैं, उसका सच जानने के लिए और पता करने के लिए कि यथार्थ है अथवा नहीं, एक ऐसे व्यक्ति का होना आवश्यक है जो अतीत के प्रति मर चुका हो, जो जानकारी के प्रति, अनुभव के प्रति मर चुका हो; ऐसा मन आवश्यक है जो पूर्णतया, समग्र रूप से नूतन, अनथका और निर्दोष हो। धर्म यथार्थ का अन्वेषण है, जिसका अर्थ है आपको स्वयं ही खोजना है और किसी का अनुसरण नहीं करना है, जो कह रहा है कि उसने पा लिया है तथा आपको उस बारे में बताना चाहता है। एक ऐसा मन आवश्यक है, जो यथार्थ को ग्रहण करे, ऐसा मन नहीं जो मात्र शाब्दिक रूप से यथार्थ को स्वीकार कर ले, तथा फिर सुरक्षित होने की आशा में यथार्थ की उस अवधारणा का अनुसरण करता रहे।

अतः जानने और महसूस करने के बीच एक अंतर है, तथा मेरे ख्याल में इसे समझ लेना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। हमारे लिए व्याख्या ही पर्याप्त होती है, जो कि 'जानना' है। हम कहते हैं : "मैं जानता हूँ कि मैं महत्वाकांक्षी हूँ, मैं जानता हूँ कि मैं लालची हूँ मैं जानता हूँ कि मैं घृणा करता हूँ", परंतु ऐसा जानना तथ्य से मुक्त होना नहीं होता। आप जान सकते हैं कि आप घृणा करते हैं, किंतु उससे मुक्त होना एवं उसकी व्याख्या और उसके कारण के पीछे पड़े रहना बिलकुल अलग चीजें हैं। तात्पर्य यह कि इस बात को जानना कि मैं स्फूर्तिहीन हूँ, मूर्ख हूँ, तथा अपनी स्फूर्तिहीनता, मूर्खता के भाव के प्रति सचेत रूप से जागरूक होना, दो एकदम अलग बातें हैं। भाव में, महसूस करने में, भरपूर जीवंतता, भरपूर शक्ति और ओजस्विता निहित है, परंतु केवल जानना तो जीवन के प्रति आंशिक पहुंच है, यह समग्र पहुंच, सम्पूर्ण दृष्टि नहीं है। आप वनस्पति-विज्ञान की दृष्टि से यह जान सकते हैं कि एक पत्ती कैसे बनती है, परंतु एक पत्ती का स्पर्श करने, उसे सूंघने, उसे वास्तव में देखने के लिए, अत्यधिक मर्मज्ञता की आवश्यकता होती है--स्वयं के मर्म में पैठने की आवश्यकता होती है। मुझे नहीं पता कि कभी आपने एक पत्ती अपने हाथ में ली है और उसे देखा है। आप सब शहरवाले हैं, और आप अपने आप में, अपनी प्रगति में, अपनी सफलताओं, महत्वाकांक्षाओं, ईर्ष्याओं में, अपने नेताओं, मंत्रियों और ऐसी ही अन्य निरर्थकताओं में व्यस्त रहा करते हैं। यह हंसने की बात नहीं है, त्रासद स्थिति है, क्योंकि यदि आपको मालूम हो कि गहराई से महसूस करना क्या होता है, तो आपके भीतर प्रचुर सहानुभूति होगी; तब आप कुछ करेंगे, तब आप अपने पूरे अस्तित्व के साथ कर्मरत होंगे, किंतु यदि आप जानते भर हैं कि गरीबी है, और सिर्फ बौद्धिक रूप से, बिना किसी भावना के, एक सरकारी अधिकारी या ग्राम-सुधारक के रूप में गरीबी हटाने के लिए काम करते हैं, बिना किसी एहसास के, तो जो भी आप कर रहे होते हैं, उसका एकदम नगण्य महत्त्व होता है।

देखिए, सत्य को समझना हो तो उत्कटता, आवेग आवश्यक है। मैं 'आवेग' शब्द का प्रयोग उसके संपूर्ण अर्थ में कर रहा हूँ--क्योंकि प्रबल भावना का होना, गहनता से तथा अपने पूरे अस्तित्व के साथ महसूस कर पाना अनिवार्य है; अन्यथा यथार्थ नामक उस अनूठे तत्त्व का कभी आपके जीवन में आगमन नहीं होगा। किंतु आपके धर्म, आपके संत कहते हैं कि आपमें इच्छा नहीं होनी चाहिए, आपको इसका निग्रह, दमन करना चाहिए, इसे जीतना और नष्ट कर देना चाहिए, जिसका अर्थ है कि आप सत्य के पास बुझे-बुझे, थके-मादे, खाली-खाली, मरे-मराए पहुंचते हैं। जीवन नामक इस विलक्षणता से मिल पाने के लिए आपमें

आवेग होना चाहिए, लेकिन यदि आप समाज द्वारा, रिवाजों द्वारा सम्मोहित हैं, यदि आप विश्वासों, रूढ़ियों, कर्मकांडों में उलझे हुए हैं, तो आपके पास आवेग नहीं हो सकता। अतः उस प्रकाश, उस सत्य, उस अपरिमेय यथार्थ को समझने के लिए पहले हमें उसे समझना होगा, जिसे हम धर्म कहते हैं, और उससे स्वतंत्र होना होगा--मात्र शाब्दिक तौर पर नहीं, बौद्धिक रूप से या व्याख्याओं द्वारा नहीं, बल्कि वस्तुतः स्वतंत्र होना होगा, क्योंकि स्वतंत्रता--आपकी बौद्धिक स्वतंत्रता नहीं, अपितु स्वतंत्रता की वास्तविक अवस्था--जीवंतता प्रदान करती है। जब आप इस सारे कूड़े-करकट से आगे निकल जाते हैं, जब आप इन सब भ्रमित करने वाली पारंपरिक, अनुकरणात्मक बातों को परे कर देते हैं, तब मन स्वतंत्र होता है, तब मन सतर्क होता है, तब मन आवेगमय, उत्कट होता है और केवल ऐसा मन ही इसमें और आगे जा सकता है।

अतः हम व्यक्ति-मानवों के रूप में--क्योंकि आप और मैं ही इन बातों से संबंधित महसूस करते हैं, जनसमूह नहीं, जनसमूह, जनता तो महज राजनीतिक लेबल है--तो हम इस बात का पता लगाएं कि धर्म से हमारा क्या अभिप्राय है। हममें से अधिकतर के लिए यह क्या है? क्या यह किसी वस्तु में विश्वास नहीं है--किसी अतिमानवीय दिव्यता में, जो हमें नियंत्रित करती है, ढालती है, आशा देती है, निर्देशित करती है? और हम उस सत्ता को अपनी पूजा-स्तुतियां अर्पित करते हैं, उस सत्ता के नाम पर हम त्याग करते हैं, उसे प्रसन्न करते हैं, उससे मांगते हैं, प्रार्थना करते हैं, तथा मुसीबतों में सहायता करने वाले अपने 'पिता' के रूप में उसे देखते हैं। हमारे लिए धर्म केवल मंदिर में तराशी हुई प्रतिमा, मस्जिद में खुदे हुए अक्षर अथवा गिरजे में लगा क्रॉस है, न सिर्फ हाथ से तराशी हुई प्रतिमा, बल्कि मन द्वारा, विचार द्वारा निर्मित प्रतिमा भी है। अतएव स्पष्टतः हमारे लिए धर्म अपने रोज़ के दुखों, रोज़ के विभ्रमों से पलायन का माध्यम है। हम असमानताओं, अन्यायों, मृत्यु, अनवरत दुःखों, संघर्षों, नाउम्मीदी और हताशा को समझ नहीं पाते हैं, इसलिए हम किसी ईश्वर, किन्हीं अनुष्ठानों, सामूहिक प्रार्थनाओं की ओर मुड़ते हैं तथा उनके द्वारा कुछ सांत्वना, कुछ राहत पाने की आशा रखते हैं। और इस प्रक्रिया में संत-महात्मा, दार्शनिक लोग, पुस्तकें--ये सब हमें अपनी विशिष्ट व्याख्या, रीति व परंपरा के भार से दबाए रहते हैं। यही हमारे जीने का तरीका है, है कि नहीं? यदि आप अपने भीतर झांके, तो क्या आप सहमत नहीं होंगे कि धर्म की यही सामान्य रूपरेखा है? यह मन को राहत पहुंचाने के लिए मन ही के द्वारा गढ़ी बात है, न कि कुछ ऐसा जो जीवन को समृद्धता व पूर्णता प्रदान करे, जीने की उत्कटता दे। तो हम यह जानते हैं, मगर यहां फिर जानना और महसूस करना दो अलग-अलग बातें हैं। संगठित धर्म के झूठपने को जानना एक बात है, लेकिन इसे देखने, इस सबको बिलकुल परे कर देने के लिए वास्तविक भावना की अथाह गहराई की आवश्यकता होती है। अतः समस्या--जिसका कोई आसान हल नहीं है--यह है कि कोई चीज़ कैसे छूटे, उसके प्रति मृत कैसे हों; इन सारी व्याख्याओं, इन सब मिथ्या ईश्वरों को कैसे तिलांजलि दें--क्योंकि ये सभी ईश्वर मन और हाथ द्वारा गढ़े गए हैं और मिथ्या हैं। कोई व्याख्या आपको इस सबसे उपराम नहीं कर सकती।

तो वह क्या है जो आपका इससे तिनका तुड़वा दे, जो आपसे यह कहलवा दे : 'अब मैं इसे छोड़ता हूं'? सामान्यतया हम कुछ बेहतर पाने के लिए ही कुछ छोड़ते हैं, तथा उसे ही हम त्याग कह देते हैं। किन्तु निश्चित तौर पर वह त्याग नहीं है। त्याग का अर्थ है बिना यह जाने छोड़ना कि भविष्य में क्या होगा, बिना यह जाने त्यागना कि आने वाला कल क्या लाएगा। यदि आप यह जानते हुए छोड़ते हैं कि कल क्या लाएगा, तब तो यह मात्र विनिमय है, बाज़ार की वस्तु है, इसका कोई मूल्य नहीं है। जब शारीरिक मृत्यु आती है तो आप नहीं जानते हैं कि आगे क्या होने वाला है, वह एक अंतिमता होती है। उसी तरह जिस सब को हम धर्म कहा करते हैं, उसके प्रति मर जाना, उसे पूरी तरह गहराई से छोड़ देना, परे कर देना,

बिना यह जाने कि अब क्या होगा; क्या आपने कभी ऐसा करके देखा है? मुझे नहीं मालूम कि यह आपकी समस्या है या नहीं, लेकिन जो सतर्क है, जरा भी जागरूक है, निश्चित रूप से यह उसकी समस्या है, क्योंकि संसार में अन्याय इतना व्यापक है। ऐसा क्यों है कि कोई कार में घूमता है, जबकि दूसरे पैदल चलते हैं? ऐसा क्यों है कि भूख है, गरीबी है और बेइंतहा अमीरी भी है? ताकतवर, सत्ता और पद पर काबिज शख्स अपनी ताकत का प्रयोग क्रूरता से क्यों करता है? किसी बच्चे की मौत क्यों होती है? हर तरफ यह असहनीय दुर्गति क्यों है? जो मनुष्य ये प्रश्न पूछ रहा है, उसे इन प्रश्नों से प्रज्वलित होना चाहिए, न कि कोई मूर्खतापूर्ण कारण खोज कर बैठ जाना चाहिए--कोई आर्थिक, सामाजिक या राजनीतिक कारण। निश्चित ही एक बुद्धिमान व्यक्ति को मात्र व्याख्यात्मक कारणों की अपेक्षा किसी अधिक गहरी सार्थकता की ओर मुड़ना चाहिए। इसी में हमारी समस्या निहित है।

सबसे पहली और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है--व्याख्याओं से संतुष्ट न हों, *कर्म* शब्द से, धूर्ततापूर्ण दार्शनिकताओं से संतुष्ट न हो जाएं, बल्कि आपको इसका एहसास हो, इसे पूरी तरह से महसूस करें कि यह समस्या इतनी विशाल है कि इसे मात्र व्याख्या से नहीं मिटाया जा सकता। यदि आप उस तरह से महसूस कर पाएं, तो देखेंगे कि मन में एक क्रांति घटित होती है। आम तौर पर अगर कोई व्यक्ति इस दुर्दशा का हल नहीं खोज पाता, तो वह कटु दोषदर्शी हो जाता है, या फिर वह अपनी कुंठा पर आधारित कोई दार्शनिक सिद्धांत आविष्कृत कर लेता है। किंतु यदि दुख के तथ्य से मेरा सामना होता है कि यहां मौत है, पतन है, तथा यदि मन समस्त व्याख्याओं, सभी समाधानों, सभी उत्तरों से पल्ला झाड़ लेता है, तो मन का सामना सीधे-सीधे उस तथ्य से होता है, और विचित्र बात यह है कि हमारा मन यह प्रत्यक्ष-बोध कभी होने नहीं देता।

तो देखने और जानने से महसूस करना, प्रेम करना भिन्न है। प्रेम करने, महसूस करने का अर्थ समर्पण नहीं है; आप समर्पण के द्वारा यथार्थ तक नहीं आ सकते। भावुकतापूर्वक किसी धारणा के लिए स्वयं को अर्पित कर देना सामान्यतया समर्पण कहलाता है, परंतु यथार्थ इससे बाहर ही रह जाता है, क्योंकि किसी बात के लिए अपने को अर्पित कर देना उस चीज से अपना तादात्म्य स्थापित कर पाना मात्र है। अपने भगवानों से प्रेम करना, कुछ शब्दों को दोहराते रहना, अपने गुरु को हार पहनाना, उसकी उपस्थिति में बेसुध होना और आंसू बहाना--आप यह सब चाहे अगले हजार वर्षों तक करते रहें, किंतु इससे आप कभी यथार्थ को नहीं पा सकेंगे। किसी बादल, किसी वृक्ष, किसी मनुष्य का प्रत्यक्ष बोध कर पाने, उससे प्रेम कर पाने के लिए अमित अवधान की, ध्यान देने आवश्यकता होती है और आप ध्यान दे ही कैसे सकते हैं जबकि आपका मन जानकारी द्वारा बाधित-विचलित है? जानकारी तकनीकी रूप से उपयोगी है, पर और कोई इसका उपयोग नहीं है। यदि एक चिकित्सक ऑपरेशन करना नहीं जानता, तो उससे दूर रहना ही अच्छा है। एक विशेष स्तर, एक विशेष दिशा में जानकारी आवश्यक है, परंतु वह हमारी दुर्दशा का हल नहीं है। संपूर्ण समाधान उस भावना में, उस उत्कटता में है जो आपके अनुपस्थित हो जाने पर, आप जो कुछ हैं उसके विस्मरण पर होती है। उत्कटता का, आवेग का यह गुण महसूस करने के लिए, समझने के लिए, और प्रेम करने के लिए ज़रूरी है।

यथार्थ बुद्धिजन्य नहीं है, लेकिन हमने बचपन से ही शिक्षा द्वारा, हर तरह के तथाकथित सीखने के द्वारा एक ऐसा मन उपजा लिया है जो तेज है, जो होड़ में लगा रहता है, जो सूचना से लदा है--वकीलों, राजनीतिज्ञों, तकनीशियनों और विशेषज्ञों के मामले में यही बात है। हमारे मन तेज-तर्रार और होशियार बना दिए जाते हैं और जीवन चलाने के लिए यही दिशा सबसे महत्वपूर्ण होती जा रही है, तथा इसीलिए हमारी सारी भावनाएं कुम्हला गई हैं। गरीब आदमी की बदहाली को देखकर आपमें कोई भावना नहीं

उपजती, किसी अमीर आदमी को अपनी आलीशान कार चलाते हुए देखकर आप कभी खुशी महसूस नहीं करते, एक अच्छा चेहरा देख कर आप कभी प्रसन्नता का अनुभव नहीं करते; जब आप एक इंद्रधनुष को अथवा हरी घास के वैभव को देखते हैं तो आपका हृदय उमगता नहीं। हम अपने काम-धंधों, अपनी दुख-तकलीफों में इतने व्यस्त रहते हैं कि कभी भी हमारे पास अवकाश का कोई क्षण नहीं होता, जब हम महसूस कर सकें कि प्रेम करना, दयालु होना, उदार होना क्या होता है--यह सब न होने पर भी हम जानना चाहते हैं कि ईश्वर क्या है! कितनी अविश्वसनीय मूर्ढ़ता और बचपना है! अतः व्यक्ति के लिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि वह जी उठे--बात पुनर्जीवित होने की नहीं है; आप मरी हुई भावनाओं में, विदा हो चुकी महिमा में पुनर्जीवन नहीं फूंक सकते। किंतु क्या हम सघनता से, पूर्णता से, प्रचुरता से जी नहीं सकते, चाहे ऐसा एक ही दिन के लिए क्यों न हो? क्योंकि ऐसा एक दिन हजार सालों को आवृत कर लेगा। यह कोई काव्य-कल्पना नहीं है। जब आप एक ऐसा समृद्ध दिवस जी लेंगे, जिसमें समय नहीं है, न भविष्य है, न अतीत, तभी आप इसे जान पाएंगे, तभी आपको उस असाधारण स्थिति की संपूर्णता का बोध होगा। उस प्रकार से जीने का जानकारी के साथ कोई भी संबंध नहीं है।

मुंबई] 24 दिसम्बर 1958